International Journal of Applied Research 2015; 1(7): 249-252

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(7): 249-252
www.allresearchjournal.com
Received: 11-04-2015
Accepted: 15-05-2015

इन्द्राणी सिंह
वर्धमान विश्वविद्यालय में गवेषणारता मानकर महाविद्यालय में अतिथि अध्यापिका

Correspondence:
इन्द्राणी सिंह
वर्धमान विश्वविद्यालय में गवेषणारता मानकर महाविद्यालय में अतिथि अध्यापिका

तैत्तिरीय उपनिषद् की प्रासंगीकता वर्तमान समाज में

इन्द्राणी सिंह

बुद्धि का स्वाभाविक प्रवृत्ति है जिज्ञासा। प्राचीन भारतीय जिज्ञासा का एक श्रेष्ठ निदर्शन है 'उपनिषद्'। वेदान्त नाम में प्रसिद्ध वेद का इस ज्ञानकाण्ड को आनुमानिक 3000 हाजार वर्ष पूर्व ही उसके अद्भुत मननशक्तिके द्वारा सृष्टि का अज्ञातरहस्य से नित्य जीवनयापन का तथा शुद्ध निर्मल चरित्रगठन का जो परमकल्याणमयी वाणी उपहारस्वरुप दिये है वो स्थानिक और कालिक सीमाको अतिक्रम करके हुये है एक शाश्वत उपदेश वाणी। मनुष्य परमेश्वर की अनुपम रचना होने के कारण उसके चिन्तन में जीवन की कला एवं जीवनोपरान्त विषयक तत्त्वं की खोज को ही सामान्य रूप से दर्शन कहा जा सकता है। दर्शन में देश की मनीषा सुरक्षित होती है। यही कारण है की अनादि काल से ऋषियों ने दर्शन निधि की खोज करके और समय समय पर सुन्दर उपदेश प्रदान करके देश को गौरवान्वित किया है। ठीक इसी प्रकार अनेक उपदेश का समाहार है कृष्णयजुर्वेद की 'तैत्तिरीय उपनिषद्'। इस उपनिषद् का शिक्षा त्रिसहस्राधिक पूर्व अरण्यचारी और नदीमातृक सभ्यता में जीस तरहा महामूल्यवान और पालनीय आदर्श थें उसी तरहा एकविंश शताव्दी में यन्त्रसर्वस्व एवं क्रमक्षयप्राप्त मानवीय मूल्यवोध युक्त इस क्षयीभूत समाज में उस आदर्श जीवनचरित का भी महत्व अनिवार्य है।

कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक में प्रपाठक 7, 8, और 9 का नाम 'तैत्तिरीय उपनिषद्' है। आरण्यक का तीन प्रपाठक उपनिषद् में 'वल्ली' नाम में अवगत है।

- *शीक्षावल्ली*
- *ब्रह्मानन्दवल्ली,* और
- *भृगुवल्ली*।

ब्रह्मानन्दवल्ली और भृगुवल्ली में विशुद्ध ब्रह्मविद्या का ही निरूपन किया गया है। परन्तु उसकी उपलब्धी के लिये चित्त की एकाग्रता एवं गुरुकृपा की आवश्यकता है। इसके लिये शीक्षावल्ली में कयि प्रकार की उपासना तथा शिष्य एवं आचार्यसम्वन्धी शिष्टाचार का निरूपन किया गया है। अतः ओपनिषद् सिद्धान्तको हृदयंगम करने के लिये सर्व प्रथम शीक्षावल्ल्युक्त उपासनादिका ही आश्रय लेना चाहिये।

शिक्षा और उपासना का उपदेश

हामारे जीवन का एक मात्र लक्ष्य है समाज का सुसंगठन एवं मोक्ष की प्राप्ति करना। परन्तु यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति तवतक नही होगा यवतक शिक्षा की प्राप्ति नहि होता। ये शिक्षा क्या हैघ इसका उत्तर हमे इस उपनिषद की प्रथम अध्याय शीक्षावल्ली से मिलता है–

"ओं शीक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः स्वरः। मात्रा वलम्। साम सन्तानः। इत्युक्तः शीक्षाध्यायः।।"[1]

शीक्षाम् अर्थात् जिससे वर्णादिका उच्चारण शिखा जाता है उसको हम शिक्षा कहते है अथवा जो शिखे जाये वो वर्णादि ही शिक्षा है। उपनिषद् के पाठ में अर्थबोध ही प्रधान विषय है। परन्तु शव्दसमूह का उच्चारण यदि विशुद्धरूप से ना हो तो अर्थबोध में विध्न घट सकता है। ईसि कारण शिक्षा का प्रयोजन आवश्यक है। शिक्षा प्रत्येक मनुष्य के लिये काम्य। इस विषय में स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है की– "Education is the manifestation of the perfection already in man"[2] । शिक्षा मनुष्य को अन्धकार जीवन से मुक्ति प्रदान करता है। मनुष्यके मन की अज्ञता को दूर करके समाज का कल्यान साधन करते है। इस उपनिषद् हमे ये शिक्षा प्रदान करते हैं की केबल शिक्षा का ग्रहन ही नही उसको आत्मस्थ करने के लिये निरन्तर चर्चा या उपासना का भी आवश्यकता है।–

"अथातः संहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः"[3]

इसका वाह्यार्थ है संहिताविषयक दर्शन या उपासना का व्याख्या करना। अर्थात् ये प्रतीत होता है की उपनिषद् का विद्या अभ्यास करने के लिये पाठ के साथ साथ श्रद्धायुक्त हो कर उपासना भी करना चाहिये। परन्तु इसका अन्तर्निहितार्थ ये है की केवलमात्र उपनिषद् ही नही कोयि भी ग्रन्ह को श्रद्धापूर्वक पाठ करने के साथ उसका दीर्घ उपासना का भी आवश्यकता है कारण मनुष्य चित्त अत्यन्त चंचल है। कोइ भी विषयको वारवार चर्चा ना करने से वो स्मृति में नही रहेता। यदि पाठ्य विषय स्मृति में नही होगा तो उसका प्रासंगिकता क्या रहेगा? उत्तर है नही रहेगा क्योंकि पाठ्य विषय मनुष्यसमाज का कोयि उपकार में ना आये तो वो निरर्थक हो याता है। आचार्य हेमचन्द्र जी ने अभ्यास प्रकरण में काहा है के–

"अभ्यासो हि कर्मसु कौशलमावहति।
नहि सकृन्निपतितमात्रेणोदविन्दुरपि ग्रावणि
निम्नतामादधतीति।"[4]

अर्थात् अभ्यास या चर्चा या उपासना ही कर्मसम्पादन में नैपुण्यता प्रदान करते है। जलविन्दु एकवारमात्र पतित होकर प्रस्तरखण्ड में कोयि क्षत सृष्टि नही कर सकता। उपासना का मुख्य फल है चित्तशुद्धि। प्रत्येक जनसाधरण के लिये चित्तशुद्धि आवश्यक है। चित्त यदि मलिन हो तो कभी अध्यात्म विद्या का विकाश सम्भव नही है एवं पार्थिव फल लाभ भी सम्भव नही होगा।

एकता का उपदेश

इस उपनिषद् के प्रारम्भ में यो शान्तिमन्त्र है–

"ओँ सह नाववतु , सह नौ भुनक्तु ,सह वीर्यं करवावहै।
तोजस्वि नावधीतमस्तु , मा विद्विषावहै।।
ओँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।"[5]

इस मन्त्र में परमेश्वर के निकट गुरु शिष्य समानरुप से संरक्षण , विद्या, साफल्य, प्रर्थना कर रहे है। और एक दुसरे को विद्वेष ना करके त्रिविध विघ्न का शान्ति कामना कर रेहे है। इस मन्त्र से यह प्रतीत होते है की शिक्षक और छात्र एकसाथ होकर विद्याप्राप्त करना चाह रहे है क्योंकि छात्र को पढाने के समय शिक्षक स्वयं ही समृद्ध होते है। यदि शिष्य और आचार्य एक हो तो कोयि भी महत् कार्य सम्पन्न हो सकता है । एकता से कार्य संपादन करने का उदाहरण हमे और भी मिलते है–

"आ मायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा।वि मायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। प्र मायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। दमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा।।"[6]

इस श्रुति के द्वारा आचार्य ब्रह्मविद्या, वेदाध्ययन, का सर्वत्र प्रचार के लिये ब्रह्मचारिगन ;शिष्यद्ध को आमन्त्रण कर रहे है। वैदिक ऋषिया एक आदर्श शिक्षाविद है। वो आपने शिष्य को उपदेश देते है की – "प्रतिवेशहसि प्र मा भाहि प्र मा पद्यस्व।।"[7]

अर्थात् उभय ही एक दुसरे के भीतर प्रवेश करना चाह रहे है। एक दुसरे के भीतर प्रवेश करने का अर्थ है एकात्मता की प्राप्ति करना। उपास्य देवता के संग एकात्मता लाभ करना ही उपासक का परम सिद्धि है। अर्थात् इस उपनिषद् हमे united we stand divided we fall का ज्ञान ही देते है। इस उपनिषद् से हमे ना केवल ये गुरु शिष्य की एकता का ज्ञान मिलता है वलकि विश्व में सर्व साधरण को संघवद्ध होकर कार्य संपन्न करने का उपदेश भी मिलता है।

तैत्तिरीय उपनिषद् का अनुशीलन करने पर इस उपनिषद् का वर्तमान समाज में क्या महत्व हे वो सामने आता है। इस उपनिषद् में अनेक उपदेश है जिसका अर्थ वहत ही तात्पर्यपूर्ण है। वर्तमान समाज आज जिस अवक्षय के रास्ते पर चल राहा है उससे निकल ने के लिये इस उपनिषद् की उपदेश का महत्व अनस्वीकार्य है।

"आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य"[8]

अर्थात् प्राचीनकाल में आचार्यगन विद्या दान हेतु अर्थ का ग्रहन नही करते थें। परन्तु सभी शिक्षाथी का शिक्षा समापन होने के पश्चात् गुरुदक्षिणास्वरूप प्रियधन दान करने का प्रथा था। इसका अन्तर्निहितार्थ ये है की कोयि शिक्षा प्रतिष्ठान को सहि तरहा से चलाने के लिये अर्थ और समर्थन की अधिक आवश्यकता है। यदि शिक्षाथी अपने शिक्षा के प्रतिदान में गुरुदक्षिणास्वरूप अर्थ या अन्य कोयि सहायता प्रदान ना करे तो ये प्रमानित होते है की वो शिक्षा का प्रकृत अर्थ से परिचित नही है। शिक्षित मनुष्य वो है जिसे कृतज्ञतावोध है। कृतज्ञता प्रकाश करने का अनेक उपाय है जेसे की आर्थिक सहायता प्रदान, प्रतिष्ठान का स्वार्थरक्षा के लिये राजनैतिक या प्रशासनिक पर्याय का सहायता प्रदान इत्यादि। कृतज्ञता प्रकाश करने का सवसे सुन्दर उपाय है शिक्षक महाशय से शिखा हुया सतता और दया की नीति को अपने जीवन में अनुसरण करना।

"सत्यान्न प्रमदितव्यम्"[9]

अर्थात् सत्य से प्रमाद नही करना चाहिये। तातपर्य ये है कि कभी भूलकर भी असत्यभाषण नही करना चाहिये। सतता और सत्यवचन विना जीवन सम्पूर्णरूप से व्यार्थ एवं रहस्यमय हो जाता है। अर्थनैतिक क्षेत्र में सतता अनिवार्य है। परिवारीक सदस्य में प्रेम वन्धन वनाये रखने के लिये सत्यवचन अनिवार्य है। 'मुण्डक उपनिषद्' में हमे मिलता है–"सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था.... "[10]। अर्थात् सत्य और मिथ्या के युद्ध में जय हमेशा सत्य का ही होता है। हमे सत्य का मार्ग कभी छोड़ना नही चाहिये। सत्य को रक्षा करने का कोयि आवश्यकता नही होता परन्तु मिथ्या को प्रकाश हो जाने का भय हमेशा रहेता है। सत्यनिष्ठ व्यक्ति ही अपने जीवन को दृढ़ और सरल वना सकता है।

"धर्मान्न प्रमदितव्यम्"[11]

अर्थात् धर्म से प्रमाद नही करना चाहिये। धर्म शब्द अनुष्ठेय कर्मविशेषका वाचक होनेसे उसका अनुष्ठान न करना ही प्रमाद है, अर्थात् धर्मका अनुष्ठान करना ही चाहिये। जिस तरहा वायु सभी फुल को स्पर्श करते है और उसका मेहेक चारों दिशायों में फैलाता है उसि तरहा धर्म भि यो सत्य है और मनुष्य का कल्यानकारी हो उसको आहरण करता है। मनुष्य को कभी अपने धर्म से दूर नही जाना चाहिये। धर्म ही मनुष्य को अपने कर्म मार्ग से परिचित कराता है। अपने परिवार और समाज को दुष्ट मनुष्य के दुष्कर्म परन्तु आच्छे मनुष्य के निष्कर्म से मुक्त रखना ये सव से उद्वेगजनक विषय है । स्वामी विवेकानन्द जी ने इस विषय में काहा है की– "For the world can be good and pure, only if our lives are good and pure . It is an effect, and we are the means. Therefore, let us purify ourselves. Let us make ourselves perfect."[12]

"भूत्यै न प्रमदितव्यम्।"[13]

हम सामाजिक जीव है, समाज मे सही तरहा से रहना तथा समाज के प्रत्येक मनुष्यके प्रति कर्तव्य करने का ज्ञान हमे इस उपनिषद् से मिलते है। इस उपनिषद् एक सुन्दर और समृद्ध जीवन की तरफ ले जाते है। उपनिषद् का समाज एक समृद्ध समाज परन्तु सभी ऋषि ये उपदेश देते थें की वैध उपाय से अर्थ का उपार्जन कभी छोडना नही चाहिये। यदि कोयि व्यक्ति अवैध उपाय से अर्थ का उपार्जन करते है तो उसे अर्थ की प्रप्ति तो होगा साथ ही साथ भय, मानसिक अशान्ति की भी प्राप्ति होगा। अर्थ का प्राचुर्य कभी भी मन का शान्ति नही दे सकता। यव कोयि व्यक्ति सतता

के साथ उपार्जन करते है तव वो अपने हर एक स्वप्न को पूरण नही कर पाता परन्तु उसे यो मन का शन्ति मिलता है उससे वो जीवन व्यापी खुस रहता है।

''स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।''[14]

अर्थात् स्वाध्याय और प्रवचन से कभी प्रमाद नही करना चाहिये। स्वाध्याय और प्रवचन से हमे ज्ञान का प्राप्ति होता है। ज्ञान के प्रति प्रत्येक मनुष्य का अनुराग प्रतिष्ठा ही हमारे लिये काम्य है। ज्ञान दान महत् दान। ज्ञान को दान करने से वो क्षयप्राप्त नही होता वो विद्यादानकारी और विद्याग्रहनकारी उभय को समृद्ध करता है। इससे हमारे अन्तर्दृष्टि का जागरण होता है। और अन्तर्दृष्टि का जागरण होने से मनुष्य ठिक,भुल का भेद कर पाता है। इससे मन शन्त रहेता है, मन का विवाद निर्मुल होता है। इसिलिये अध्ययनरत रहेना ही हमारा कर्तव्य है।स्वामी विवेकानन्द जी ने इस विषय में काहा है की– "Doing is good but that comes from thinking. Fill yourself therefore with good thoughts"[15] यव कोयि स्वाध्याय करेगा और प्राप्त कीये गये ज्ञान का विस्तार करेगा ये तभी सम्भव होगा।

''देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।''[16]

अर्थात् जप, प्रार्थना, ध्यान इत्यादि आध्यात्मिक अभ्यास कभी त्याग नही करना चाहिये। जीवनयुद्धके सम्मुखीन होने के लिये मन को शान्त रखना जरुरी है, ये कर्म वही कर सकता है यो आध्यात्मिक दिक से वलशाली हो। इससे आत्मविश्वास जाग्रत होता है। कवीर जी ने काहा है की– "When you were born, you cried whereas others rejoiced. When you die make sure that you smile while the world weeps for you"[17]। अर्थात् महानता के साथ जीवन अतिवाहित करना चाहिये। इसका अलग अर्थ ये शिखाता है की हमे हमेशा अपने संस्कृतिक और आध्यात्मिक परंपरा को श्रद्धा करना चाहिये।

''मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।''[18]

अर्थात् माता, पिता, आचार्य, अतिथि पूजनमें कभी प्रमाद नही होना चाहिये। तात्पर्य ये है की ये सब देवताके समान उपासना करनेयोग्य है। माता,पिता हमारे जन्मदाता तथा पालनकर्ता और आचार्य हमारे शिक्षादाता और अतिथि हमारे घर में आगमन करके हमारे घर को घर वनाते है। जीवन के हर समय में हमे इन सभी का आवश्यकता है। माता,पिता,गुरु केवल साक्षात् देवता ही नही इन सभी का प्रणाम मन्त्र भी है

मातृ प्रणाम मन्त्र– ''भूमेर्गरीयसी माता स्वर्गादुच्चतरः पिता।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।''[19]
पितृ प्रणाम मन्त्र–''पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः।।''[20]
आचार्य प्रणाम मन्त्र– ''गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुगुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।''[21]

वर्तमान समाज में मनुष्य धन, सम्पत्ति को अधिक प्राधान्य देते है। हमारे श्रद्धा करने का तात्पर्य वदल हीं गया है। इसि लिये माता पिता को अपने सन्तान से दुर्व्यावहार मिल राहा है, आचार्य को अपने शिष्य से यथार्थ सम्मान नही मिल राहा है, और अतिथि को अनादर प्राप्त हो रहा है। माता पिता को जिस समय अपने पुत्र की अधिक अवश्यकता हे उसि समय वो उसे वृद्धाश्रम में छोड आते है। क्या ये हीं हमारा कर्तव्य है? धन, सम्पत्ति ही सब कुछ नही होता। आज माता पिता, आचार्य और अतिथि के साथ यो दुर्व्यावहार हो रहा है वो कभी हमारे साथ भी हो सकता है ये हमे सोचना चाहिये क्योंकि समय किसि के लिये नही रुकता। अगर सम्मान पाना हो तो सम्मान देना शिखना होगा। सदाचार की रक्षा के लिये गुरुजनों के प्रति श्रद्धा रखते हुये उन्हीं के आचरणों का अनुकरण करना चाहिये। वर्तमान समाज में यो अव्यवस्हा चल रहा है उसका निवारण करने के लिये ''मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।'' इस उपदेश का प्रचार अनिवार्य है।

''श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया अदेयम्।''[22]

श्रद्धापूर्वक दान में भी कभी भूल नही होना चाहिये।ये यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति हमे इस उपनिषद् से मिलते है। स्वामी विवेकानन्द जी ने काहा है की– "Do not stand on a high pedestal and take five cents in your hands and say, 'Here my poor man'; but be grateful that the poor man is there, so that by making a gift to help yourself. It is not the receiver that is blessed, but it is the giver. Be thankful that you are allowed to exercise your power of benevolence and mercy in the world, and thus become and perfect"[23] ।

आर्थिक, शारीरिक यो सहायता ही हो वो सच्चे मन से श्रद्धा के साथ करना चाहिये। दान करने का मनवृत्ति हमे धन, सम्पत्ति की आसक्ति से मुक्त करता है। हमे दान कभी भी अभिमान और दाम्भिकता के साथ नही करना चाहिये। किसि असहाय व्याक्ति को दान करने से मन स्वच्छ ,पवित्र होता है और उस व्यक्ति को भी सहायता मिलता है। इससे हम समाज को परवर्ति प्रजन्म को एक नयी उम्मिद, नयी दीशा दिखा सकते है।

अन्न का महत्व विषय में उपदेश प्रदान

इस उपनिषद् मे ब्रंह्मज्ञान का प्रथम द्वार अन्न ही हैं। इस लिये अन्न की निन्दा या तिरस्कार नही करना चाहिये।– ''अन्नं न परिचक्षीत''[24]

शरीर का रक्षा और पुष्टि भी हमे अन्न से ही प्राप्त होता है। प्राण भी अन्न द्वारा ही शरीर में अधिष्ठित रहेता है। शरीर के ना रहने से कोयि भि पुरुषार्थ सिद्ध नही हो सकता। हमारे देश में कुछ मनुष्य एसे है जिसको अन्न की प्राप्ति भी नही होता और कुछ मनुष्य एसे है जो अन्न का अनादर करते है। एक निवाला अन्न से यदि किसिका भुख मिटता है तो हमे कभि भी अन्न का अपमान नही करना चाहिये। यदि कोयि निवासस्थानपर आते है तो उसकी उपेक्षा नही करना चाहिये। सामर्थ्यानुसार अन्न, जल एवं आसनादिसे उसका अवश्य ही सत्कार करना चाहिये। ऐसा करने से वह अन्नवान्, कीर्तिमान्, तथा प्रजा,पशु और ब्रह्मतेज से सम्पन्न होता है। इस प्रकार अन्नकी महिमा का वर्णन करके भिन्न–भिन्न आश्रयों में भिन्न–भिन्नरुपसे उसकी उपासना का विधान किया गया है।–

''अन्नं न निन्द्यात्। तद्व्रतम्। प्राणो वा अन्नम् शरीरमन्नादम्।प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम्। शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्।.....''[25]

इस समय अनेक राजनैतिक और अर्थनैतिक वादोंका ऐसा भयंकर जाल फैल गया है जिसके कारण जिन महान दार्शनिक वादोंने हमारे व्यक्तिगन और सामाजिक जीवनको चिन्तनशील एवं विचारशील बनाकर आध्यात्मिक उत्कृष्टताकी ओर प्रवृत्त कर रखा था, उनकी चर्चा ही बंद हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप वर्तमान में राग–द्वेष और हिंसा–प्रतिहिंसाका प्रवल प्रवाह हो रहा है।

इस उपनिषद् से शिक्षा और जीवनादर्शका एक अतिसुन्दर चित्र मिलते है। और मिलते है अन्न से आनन्द तक ब्रह्मचैतण्य का क्रमविकाश एवं आनन्दमीमांसा। इससे हमे ये ज्ञात होते है की आनन्द से ही जगत का सृष्टि–स्थिति–लय है। जीवन परिवर्तनशील है। आज यो युवा हे काल वो वृद्ध होगा और यो वृद्ध हे उसे समय के नियम से पञ्चत्व प्राप्त होगा। तो हमें जीवन आनन्दपूर्वक अतिवाहित करना चाहिये। अर्थात् इस उपनिषद् हमे आनन्द प्राप्त करने का उपाय प्रदान करके हमारे जीवन को समृद्ध करते है और हमें परिपूर्ण करते है।

तथ्यसूत्र

1. तैत्तिरीयोपनिषद् शीक्षावल्ली द्वितीय अनुवाक श्लोक 1
2. www.swamivivekanandaquotes.org
3. तैत्तिरीयोपनिषद् शीक्षावल्ली तृतीय अनुवाक श्लोक 1
4. काव्यादर्श पृष्ठा 233
5. तैत्तिरीयोपनिषद् शान्तिपाठ
6. तैत्तिरीयोपनिषद् शीक्षावल्ली चतुर्थ अनुवाक श्लोक 3
7. तैत्तिरीयोपनिषद् शीक्षावल्ली चतुर्थ अनुवाक श्लोक 4
8. तैत्तिरीयोपनिषद् शीक्षावल्ली एकादश अनुवाक श्लोक 1
9. तैत्तिरीयोपनिषद् शीक्षावल्ली एकादश अनुवाक श्लोक 1
10. मुण्डक उपनिषद् तृतीय मुण्डक प्रथम खण्ड श्लोक 6
11. तैत्तिरीयोपनिषद् शीक्षावल्ली एकादश अनुवाक श्लोक 1
12. www.ramakrishna.org
13. तैत्तिरीयोपनिषद् शीक्षावल्ली एकादश अनुवाक श्लोक 1
14. तैत्तिरीयोपनिषद् शीक्षावल्ली एकादश अनुवाक श्लोक 1
15. www.swamivivekanandaquotes.org
16. तैत्तिरीयोपनिषद् शीक्षावल्ली एकादश अनुवाक श्लोक 2
17. www.books.google.com
18. तैत्तिरीयोपनिषद् शीक्षावल्ली एकादश अनुवाक श्लोक 2
19. मातृ–पितृ–स्तोत्रम् श्लोक 1
20. मातृ–पितृ–स्तोत्रम् श्लोक 2
21. श्रीगुरुस्तोत्रम् श्लोक 3
22. तैत्तिरीयोपनिषद् शीक्षावल्ली एकादश अनुवाक श्लोक 3
23. www.greenmesg.org
24. तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली अष्टम अनुवाक श्लोक 1
25. तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली सप्तम अनुवाक श्लोक 1

सहायक ग्रन्थसूची

1. गम्भीरानन्द, स्वामी ;सम्पादकद्ध – *उपनिषद् ग्रन्थावली* ;प्रथम भागद्ध, उद्बोधन कार्यालय, कलकाता , 1962.
2. गम्भीरानन्द, स्वामी ;सम्पादकद्ध – *उपनिषद् ग्रन्थावली* ;द्वितीय भागद्ध, उद्बोधन कार्यालय, कलकाता, 1964.
3. गम्भीरानन्द, स्वामी ;सम्पादकद्ध – *उपनिषद् ग्रन्थावली* ;तृतीय भागद्ध, उद्बोधन कार्यालय, कलकाता, 1965.
4. वन्द्योपाध्याय, प्रणवकुमार भट्टाचार्य, निवेदिता– *संस्कृत शिक्षार पथनिर्देश*, शोभा पावलिकेशन, कलकाता , तृतीय संस्करण 2014.
5. वन्द्योपाध्याय, शान्ति– *वैदिक साहित्येर रूपरेखा* , संस्कृत पुस्तक भाण्डार, कलकाता , आगष्ट 2003.
6. सेन, अतुलचन्द्र तत्त्वभूषण, सीतानाथ घोष, महेशचन्द्र ;अनुवादक एवम सम्पादकद्ध– *उपनिषदः*, हरफ प्रकाशनी, कलकाता , फेब्रुयारी 2000.